Chap- 5

**पंचम अध्याय :**

# पुष्टिमार्ग के प्रमुख रचनाकारों का परिचयात्मक विवरण

## १. पुष्टिमार्ग के गोस्वामी आचार्य वर्ग :-

### १. वल्लभाचार्य ::

पुष्टिमार्ग के संस्थापक वल्लभाचार्य का विवरण प्रथम अध्याय के अन्त में दिया जा चुका है।

### २. गोपीनाथ जी ::

गोपीनाथ जी वल्लभाचार्य के ज्येष्ठ पुत्र थे इनका जन्म संवत १५६८ में अश्विन कृष्ण द्वादशी को अड़ेल में हुआ था। गोपीनाथ जी की शिक्षा – दीक्षा पिता वल्लभाचार्य की देख–रेख में सम्पन्न हुई थी अतः पिता का इनके जीवन पर विशेष प्रभाव था। गोपीनाथ जी उच्चकोटि के विद्वान और तेजस्वी आचार्य थे। वल्लभाचार्य के गोलकवास के पश्चात् गोपीनाथ जी पुष्टि सम्प्रदाय के आचार्य हुए।

गोपीनाथ जी प्रतिदिन श्रीमद् भागवत का पाठ करने के उपरान्त ही प्रसाद ग्रहण करते थे। यह देख महाप्रभु वल्लभाचार्य ने श्रीमद् भागवत में से भगवान् के एक हजार नाम एकत्र कर 'श्री पुरुषोत्तम सहस्त्रनाम स्त्रोत्रम्' की रचना की तथा गोपीनाथ जी से कहा कि नित्य इसका पाठ करें, जिससे श्रीमद् भागवत के सम्पूर्ण पाठ का फल प्राप्त होगा।

गोपीनाथ जी भी पिता के समान सम्प्रदाय के प्रचार–प्रसार हेतु यात्राएँ किया करते थे। इनके यात्रा का मुख्य क्षेत्र गुजरात प्रान्त था। अपनी यात्राओं में जो भी धन व भेंट प्राप्त होती थी उसे गोपीनाथ जी श्री नाथ जी को समर्पित कर देते थे।

गोपीनाथ जी का केवल एक ही ग्रन्थ प्राप्त है – साधन दीपिका।

गोपीनाथ जी के एक पुत्र पुरुषोत्तम जी तथा दो कन्याएँ सत्यभामा जी और लक्ष्मी जी थी।

गोपीनाथ जी का गोलोकवास संवत १५९९ में जगन्नाथ पुरी में हुआ था।

## ३. गुसाँई विट्ठलनाथ जी ::

विट्ठलनाथ जी वल्लभाचार्य के द्वितीय पुत्र हैं। विट्ठलनाथ जी का जन्म संवत् १५७२ की पोष कृष्ण नौ, शुक्रवार को चरणाट नामक स्थान में हुआ था। इनकी शिक्षा दीक्षा काशी में सम्पन्न हुई थी। कुशाग्र बुद्धि के धनी विट्ठलनाथ जी ने अल्पआयु में ही वेद, वेदान्त, दर्शनशास्त्र, उपनिषद, पुराण–साहित्य एवं विविध कलाओं का अध्ययन किया था। विट्ठलनाथ जी ने दो विवाह किए थे। जिनसे सात पुत्र और चार पुत्रियाँ थी पहली पत्नी का नाम रुकमणी था – गिरिधर जी, गोविन्दराम जी, बालकृष्ण जी, गोकुलनाथ जी, रघुनाथ जी, यदुनाथ जी, शोभा जी, कमला जी, देवकी जी और यमुना जी। दूसरी पत्नी का नाम पद्मावती था इनसे एक पुत्र घनश्याम जी थे।

अग्रज गोपीनाथ जी एवम् तद्पुत्र पुरुषोत्तम जी की मृत्यु के पश्चात् विट्ठलनाथ जी पुष्टि सम्प्रदाय के आचार्य के पद पर आसिन हुए। विट्ठलनाथ जी ने भी पिता की भाँति देश की यात्रा की। इन यात्राओं से जो द्रव्य प्राप्त होता था उसे श्री नाथ जी की सेवा में लगाया जाता था। वल्लभाचार्य ने श्री नाथ की सेवा का कार्य बंगाली ब्राह्मणों को सौंपा था किन्तु कालान्तर में विट्ठलनाथ जी ने श्री नाथ जी की सेवा का कार्य साँचौरा ब्राह्मणों को सौंपा, जो आज भी यथावत् है। विट्ठलनाथ जी ने छः बार गुजरात की यात्रा की, ब्रज मंडल की यात्रा की, जगन्नाथ पुरी की यात्रा की। इन सभी यात्राओं में विट्ठलनाथ जी ने पुष्टिमार्ग का प्रचार किया तथा अनेक लोगों को अपना शिष्यत्व प्रदान कर कृतार्थ किया।

जगन्नाथ पुरी की यात्रा के दौरान हो रहे रथोत्सव को देख कर यह परम्परा विट्ठलनाथ जी ने अपने पुष्टि सम्प्रदाय में भी प्रारम्भ की, जो आज यथावत् रूप से मनाई जाती हैं।

पुष्टिमार्गीय साहित्य से ज्ञान होता है कि तत्कालीन शासन वर्ग पर विट्ठलनाथ जी का अपूर्व प्रभाव था। सम्राट अकबर विट्ठलनाथ जी के प्रकाण्ड पांडित्य व अनुपम व्यक्तित्व से अत्यन्त प्रभावित थे।[१] अकबारी दरबार के कई महानुभाव आपके सेवक बन गए थे–राजा मानसिंह, राजा टोडरमल, राजा बीरबल, संगीतकार तानसेन। सम्राट अकबर ने विट्ठलनाथ जी को कई राजकीय सम्मान व सुविधाएँ दी थी। इनमें ब्रज के आस–पास की भूमि भेंट स्वरूप दी गई थी। जिस पर विट्ठलनाथ जी ने वर्तमान गोकुल गाँव बसाया था। सम्राट अकबर तथा कई उच्च राजकीय अधिकारीयों द्वारा पटे–परबाने और फरमान जारी किए गए थे जिनका विवरण हमें कृष्णलाल मोहनलाल झवेरी द्वारा प्रकशित पुस्तक में मिलता है।[२]

वल्लभाचार्य जी की भाँति विट्ठलनाथ जी की भी बैठकें हैं जो 'गुसाँई जी की बैठक' के नाम से पुष्टि सम्प्रदाय में जानी जाती है। इन बैठकों की संख्या २८ है।

विट्ठलनाथ जी के कई शिष्य सेवक थे जिनमें सभी–जाति और वर्ण के व्यक्ति थे। इन शिष्यों में मुख्य २५२ शिष्य सेवक थे जिनका विवरण दौ सौ बावन वैष्णवन की वार्ता में मिलता है।

वल्लभाचार्य द्वारा शुरू की गई ब्रज परिक्रमा को विट्ठलनाथ जी ने भी यथावत् रखा है। विट्ठलनाथ जी ने गोकुल से मथुरा विश्राम घाट पर आकर, महाप्रभु वल्लभाचार्य की बैठकों में भोग लगा कर ब्रज चौरासी कोस की परिक्रमा का नियम लेकर सन् १५४४ की भाद्र पद शुक्ल द्वादशी को ब्रज यात्रा प्रारम्भ की थी जो आज भी निरबाध रूप से चल रही है। आज देश–विदेश से लाखों हिन्दू लोग सीधे ब्रज पहुँच कर, ब्रज यात्रा और गिरिराज जी की परिक्रमा करते हैं तथा यमुना नदी में स्नान कर अपने को धन्य मानते हैं।

विट्ठलनाथ जी ने संगीत का भी भगवत् सेवा में विनियोग किया है। विट्ठलनाथ जी ने अपने पिता से आगे बढ़कर श्री नाथ की सेवा विस्तार के अनुसार, ऋतु-उत्सवों के अनुरूप अलग-अलग राग-रागिनियों में बद्ध गायन करने का विधान किया है जिसे पुष्टि सम्प्रदाय में 'कीर्तन' के नाम से जाना जाता है। इस हेतु विट्ठलनाथ जी ने अष्टछाप की स्थापना की जिनमें चार कवि अपने पिता के तथा चार कवि अपने समय के लिए थे-कुम्भनदास, सूरदास, कृष्णदास, परमानंद दास, गोविंददास, छीतस्वामी, चतुर्भुजदास और नंनदास। ये आठों महानुभाव श्रेष्ठ कवि, गायक एवम् संगीतज्ञ थे। इन आठों भक्तों के द्वारा किए गए भगवद् लीला गान से ब्रज भाषा की उन्नति की तथा हिन्दी साहित्य को अनुपम भेंट दी। साथ अन्य साम्प्रदायिक शिष्य-सेवकों की रचनाओं का भी अपना विशिष्ट स्थान हैं।[३,४]

विट्ठलनाथ जी अत्यन्त विद्वान आचार्य थे अपने पिता की भाँति आपने भी कई ग्रन्थों की रचना की। जिनमें कुछ पिता के अपूर्ण ग्रन्थ पूर्ण किए, कुछ टीकाएँ लिखी और कुछ स्वतंन्त्र ग्रन्थ रचे। विट्ठलनाथ जी ने संस्कृत और ब्रजभाषा दोनों भाषाओं में ग्रन्थ रचना की है। विद्वानों के मतानुसार विट्ठलनाथ जी रचित लगभग ५० ग्रंथ हैं। जिनमें मुख्य निम्नलिखित हैं।[५]

अणुभाष्य के अन्तिम डेढ़ अध्याय, सुबोधिनी की पूर्ति और टिप्पाणी, विद्वन्मंड़न, शृंगार रस मण्डन, निबन्ध प्रकाश टीका, भक्ति हंस, भक्ति हेतु, भक्ति निर्णय, विज्ञाप्ति, षोडश ग्रन्थ पर टीका, निर्णय ग्रन्थ, स्फुट स्त्रोतादि ग्रन्थ और टीकाएँ आदि।

अपने अंतिम समय में विट्ठलनाथजी ने अपनी समस्त चल-अचल सम्पति व श्री नाथ जी के सभी सेव्य स्वरूप अपने सात पुत्रों में बाँट दिए थे। इन सातों पुत्रों की पृथक परम्परा आज भी पुष्टि सम्प्रदाय में विद्यामान है जिसे 'सप्त गृह' के नाम से जाना जाता है। अधिकतर विद्वानों ने विट्ठलनाथ जी का तिरोधान संवत १६४२ से माना है। विट्ठलनाथ जी गिरिराज की कन्दरा में श्री नाथ जी भगवान

की सेवा करते समय सदेह लीन हो गए थे। कन्दरा में विट्ठलनाथ जी का उतरीया वस्त्र मिला जिससे गिरिधर जी ने (विट्ठलनाथ जी के ज्येष्ठ पुत्र) विट्ठलनाथ जी की उत्तर क्रिया की।

**विट्ठलनाथ जी का महत्व**

महाप्रभु वल्लभाचार्य द्वारा स्थापित पुष्टिमार्ग को चार चाँद लगाने का श्रेय विट्ठलनाथ जी को जाता है। भारत भ्रमण कर विट्ठलनाथ जी ने अपने पुष्टि सम्प्रदाय का व्यापक प्रचार–प्रसार किया। तत्कालीन समय के उत्तर भारत को श्री कृष्ण भगवान के रंग में रंगने का अत्यधिक कार्य विट्ठलनाथ जी ने किया। विट्ठलनाथ जी ने अपने जीवन में साहित्य, संगीत एवं विविध ललित कलाओं को भगवतार्थ समर्पित करके इन्हें लौकिकता से अलौकिकता में परिवर्तित कर दिया। विट्ठलनाथ जी ने सम्प्रदाय में कीर्तनकार, चित्रकार, संगीतज्ञ, शिल्पी, जौहरी, पाक कला विशेषज्ञ एवं अन्य कला विदों को अपने सामर्थ्य व उपदेश के द्वारा श्री नाथ जी की सेवा का उत्तम अवसर दिया। साथ ही विट्ठलनाथ जी ने लोक कलाओं को भी भगवत् सेवा में लिया जैसे–चौक पूरना, रंगोली सजाना, सांझी कला और अनेक प्रकार की पर्वोत्सव प्रणाली जो आज भी सम्प्रदाय का एक भाग बनी हुई है। इस प्रकार विट्ठलनाथ जी ने भारतीय संस्कृति में निहित 'सत्यम्–शिवम्–सुन्दरम' की भावना को जन–जन में जगाया तथा सामान्य मनुष्य जीवन में पहुँचाया। विट्ठलनाथ जी ने वर्ग भेद रहित समाज की स्थापना की और नवीन मानव मूल्यों का निर्धारण कर, यह सिद्ध कर दिया कि पुष्टि सम्प्रदाय की भक्ति भावना किसी एक वर्ग या जाति की धरोहर नहीं है बल्कि समाज के सभी मनुष्यों का इस पर समान अधिकार है। विट्ठलनाथ जी ने समाज एवं धर्म द्वारा उपेक्षित स्त्री, शूद्र व म्लेच्छ जाति के लोगों को भी शरण में लिया। विट्ठलनाथ जी की भावना 'सर्वभूत हिते रतः' की थी। विट्ठलनाथ जी के शिष्य सेवकों में राजा–महाराजाओं से लेकर भिक्षुक, धुरन्धर विद्वानों से लेकर मूर्ख एवं कुलीन जाति के व्यक्ति से लेकर क्षुद्र अन्त्यज एवं म्लेच्छ तक के सभी लोग हैं। यहाँ तक कि

इस्लाम धर्म के भी कई मुसलमानों को विठ्ठलनाथ जी ने दीक्षा दी थी। सर्वजन सुलभ इस पुष्टि सम्प्रदाय में संसार का कोई भी प्राणी आकर अपना आत्म कल्याण का मार्ग प्रशस्त कर सकता है।

विठ्ठलनाथ जी ने अपने समय के तत्कालीन अन्य सम्प्रदाय के महानुभावों व आचार्यों का भी योग्य सम्मान किया था जैसे–स्वामी हरिदास, हीत हरिवंश, तानसेन आदि का साहित्य भी भगवत् सेवा में स्वीकार किया था। भारत के धर्माचार्यो में विठ्ठलनाथ जी का स्थान अनुपम एवम् बेजोड़ है। कई विद्वानों ने पुष्टि सम्प्रदाय का वैभव देख कर विठ्ठलनाथ जी पर आडम्बर, विलासता का दोषारोपण किया था। विठ्ठलनाथ जी धन वैभव को भगवत् सेवा के द्वारा सर्वथा उपयुक्त बना देना चाहते थे। तत्कालीन इस्लामी (मुगल) शासन युग में जिस प्रकार धन–सम्पती और कला साधनों का दुरुपयोग भोग विलास में हो रहा था, उससे वैष्णव समाज को दूर रख कर और राग–भोग–शृंगार के द्वारा उन सबका भगवत् सेवा में विनियोग किया जाए, यही धन–सम्पति और कला की सार्थकता को विठ्ठलनाथ जी ने प्रतिष्ठित किया।

अन्तः विठ्ठलनाथ जी एक कुशल प्रशासक, नीतिज्ञ, न्यायकर्ता, कला पारखी, धर्माचार्य,. श्रेष्ठ संगीतज्ञ, साहित्याचार्य एवम् सामाजिक और राष्ट्रीय अखण्डता व एकता के प्रतीक कहे जा सकते हैं।

### ४. गोकुलनाथ जी ::

गोकुलनाथ जी विठ्ठलनाथ जी के चतुर्थ पुत्र थे। गोकुलनाथ जी का जन्म विक्रम संवत् १६०८ में मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमी को अड़ैल में हुआ था। इनका जन्म नाम वल्लभ था। कर्नाटक के विद्वान नारायण भट्ट से गोकुलनाथ जी ने वेद, वेदान्त, दर्शन आदि का अध्ययन किया था। तद् पश्चात् साम्प्रदायिक ग्रन्थों का भी अध्ययन किया तथा अष्टछाप के कवि गोविन्द दास से संगीत की शिक्षा ग्रहण की थी। गोकुलनाथ जी का विवाह विक्रम संवत् १६२४ के अषाढ कृष्ण द्वितीया,

गुरुवार को पार्वती देवी से हुआ था। इनसे गोकुलनाथ जी की चार संतानें थीं– गोपाल जी, विट्ठलेश जी, ब्रजरत्न जी तथा पुत्री रोहिणी जी। पारिवारिक बँटवारे में गोकुलनाथ जी को 'श्री गोकुलनाथ जी ठाकुर जी' का स्वरूप मिला था जो आज गोकुल में ही विद्यामान है। विट्ठलनाथ जी के सात पुत्रों में गोकुल नाथ जी की ख्याति सबसे अधिक थी। गोकुलनाथ जी को सम्प्रदाय में 'महाप्रभु' अथवा 'प्रभुचरण' कहा जाता है। तद्काल में पुष्टि सम्प्रदाय में गोकुलनाथ जी सार्वाधिक प्रतिभाशाली व प्रभावशाली आचार्य थे। यधपि गोकुलनाथ जी अपने अग्रजों का व शिष्य-सेवकों का पर्याप्त सम्मान करते थे। विट्ठलनाथ जी की भाँति गोकुलनाथ जी ने भी यात्राएँ कर पुष्टि सम्प्रदाय का व्यापक प्रचार–प्रसार किया। इनके शिष्य सेवक भडूची (भरूची) वैष्णव के नाम से जाने जाते हैं। गोकुलनाथ जी के शिष्य सेवक ठाकुर जी की स्वरूप सेवा से अधिक गोकुलनाथ जी की गद्दी की सेवा को ही अपना सर्वस्व मानते हैं। जबकि अन्य पुष्टिमार्गीय पीठों में ठाकुर जी की स्वरूप सेवा का ही प्राधान्य है। सम्प्रदाय में ऐसा कहा जाता है कि जब गोकुलनाथ जी का जन्म हुआ तो विट्ठलनाथ जी ठाकुर जी की सेवा में तल्लीन थे। पुत्र जन्म के समाचार से विट्ठलनाथ जी को विवश होकर सेवा स्थगित करनी पड़ी। इस कारण विट्ठलनाथ जी ने कहा कि–इस बालक के कारण ठाकुर जी की सेवा में बाधा पड़ी है अतः इसके अनुयायी ठाकुर जी की स्वरूप सेवा से वंचित रहेंगे।[६] गोकुलनाथ जी के शिष्य सेवकों में (७८) अठ्तर प्रमुख हैं।

गोकुलनाथ जी के जीवन की सर्वाधिक प्रसिद्ध घटना है–माला–तिलक–प्रसंग। बादशाह जहाँगीर ने चिद्रुप या जद्रुप नाम सन्यासी के प्रभाव में आकर यह राजकीय हूकम दिया था कि कोई भी वैष्णव तुलसी माला नहीं पहनेगा और तिलक नहीं लगाएगा। जो भी वैष्णव ऐसा करते उन्हें दण्ड दिया जाता था। इस कारण वैष्णव समाज में अत्यन्त भय और आतंक व्याप्त हो गया था। जब गोकुलनाथ जी को इस बात का पता चला तो उन्होंने राजकीय अधिकारियों से इस हूकम को वापस लेने की विनती की किन्तु कालान्तर में गोकुलनाथ जी ही ब्रज भूमि का

त्याग करत ऐटा जिले के गंगा तटवर्ती के समीप सोरों गाँव में रेहने चले गए। तद्पश्चात तिलक–माला–प्रसंग की बात इतनी आगे बढ़ी की हिन्दू वैष्णवों व मुसलमानों में विद्रोह होने लगा। परिस्थिति को जान कर गोकुलनाथ जी नें बादशाह जाँहगीर से भेंट कर उन्हें तुलसी–माला व तिलक का महत्व समझाया तथा राज आज्ञा वापस लेने के लिए प्रार्थना की। सम्राट जहाँगीर गोकुलनाथ जी के व्यक्तित्व व पांडित्य से प्रभावित हुआ तथा उसने यह कठोर राज आज्ञा वापिस ली। इस प्रसंग से समस्त ब्रज में गोकुलनाथ जी की जय जय कार हो गयी।

गोकुलनाथ जी भी अपने पूर्वजों की भाँति उच्च कोटि के लेखक, कवि और वक्ता थे। गोकुलनाथ जी ने गद्य–पद्य दोनों में विद्याओं में ग्रन्थ रचना की है। इनके ग्रन्थ संस्कृत भाषा और ब्रजभाषा में प्राप्त होते हैं। गोकुलनाथ जी के प्रमुख ग्रन्थ इस प्रकार है–सर्वोतम स्तोत्र विवृति, वेणुगीत की सुबोधिनी टीका पर स्वतन्त्र लेख, गुप्त रस टीका, षोडष ग्रन्थ की टीका, श्रीमद् वल्लभाष्टक व्याख्या, समर्पण गद्यार्थ आदि।

गोकुलनाथ जी की कुल १३ बैठकें हैं। गोकुलनाथ जी का तिरोधान विक्रम संवत् १६९७ की फाल्गुन कृष्ण नवमी को गोकुल में हुआ था।

**गोकुलनाथ जी महत्व**

वल्लभाचार्य जी के जिस पुष्टिमार्ग का विट्ठलनाथ जी ने भारत के कोने – कोने तक पहुँचाया था उसकी जड़ों को और मजबूत करने का कार्य गोकुलनाथ जी ने किया। सम्राट जहाँगीर से मिल कर तिलक–माला पर लगे प्रतिबन्ध को उठवा कर सम्प्रदाय़ का वर्चस्व बढ़ाया। गोकुनलाथ जी ने मौखिक रूप में वार्ता साहित्य का प्रतिवादन किया जिसे लिपि बद्ध करने का कार्य हरिराय जी ने गोकुलनाथ जी के अन्तिम समय में किया। गोकुलनाथ जी ने व्याख्याता के रूप में पुष्टि भक्ति, सेवा सिद्धान्त और वैष्णवों के आचारण को निरूपित किया। प्रभुदयाल मीतल जी ने वार्ताओं के बारे में लिखा है–'वार्ता पुस्तकें ब्रज भाषा साहित्य के प्राचीन महाकवियों के जीवन वृतान्त प्रकट करने के कारण महत्वपूर्ण हैं ही किन्तु

इनका महत्व इसलिए और भी अधिक है कि ये ब्रजभाषा की प्रारम्भिक गद्य रचनाएँ हैं। इनमें सत्रहवीं शताब्दी के ब्रजभाषा गद्य का रूप ज्ञात होता है। इन पुस्तकों में दी हुई वार्ताओं में उस समय की धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक स्थिति पर भी बड़ा महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है–इसलिए इसका ऐतिहासिक मूल्य भी कम नहीं हैं।'[७]

उपरोक्त कथन से यह स्पष्ट है कि ये वार्ताएँ गोस्वामी गोकुलनाथ जी के श्री मुख से निसृत हुई थी। उन्होंने अपने पूज्य पिता गुसाँई विठ्ठलनाथ जी और महाप्रभु वल्लभाचार्य जी के शिष्य सेवकों, भक्तों तथा तत्कालीन महापुरुषों का ऐसा व्यवस्थित, प्रभावी एवं सटीक विवरण लोगों के समक्ष रखा जिससे वे उनके उच्च चरित्रों से शिक्षा ग्रहण कर सके। ये ही चरित्र वार्ताओं के रूप में प्रसिद्ध हुए। अपनी अनवरत लम्बी यात्राओं और स्थान विशेष पर चरित्र–चित्रण के कार्यों से इन वार्ताओं को गोस्वामी जी लिपिबद्ध नहीं कर सके। उनके तत्कालीन शिष्यों, जिनमें कल्याण भट्ट प्रमुख हैं, ने समय–समय पर इन्हें लेखबद्ध अवश्य किया। तत्पश्चात् गोस्वामी जी के तत्वावधान में उनके सुपौत्र हरिराय जी ने इन वार्ताओं का संकलन एवं सम्पादन किया।[८]

## ५. हरिराय जी ::

वल्लभाचार्य की चौथी पीढ़ी में हरिराय जी का जन्म हुआ था। हरिराय जी का जन्म संवत् १६४७ आश्विन कृष्ण पंचमी को गोकुल में हुआ था।[९] हरिराय जी सम्प्रदाय में विठ्ठलनाथ जी के प्रतिरूप में जन्मे माने जाते हैं। हरिराय जी को गोकुलनाथ जी ने दीक्षा दी थी। अतः गोकुलनाथ जी के मार्गदर्शन में ही हरिराय जी ने समस्त वेद,. वेदान्तादि ग्रन्थों का अध्ययन किया तथा साम्प्रदायिक ग्रन्थों तथा सेवा का मार्गदर्शन भी प्राप्त किया। हरिराय जी का विवाह सुन्दरवती देवी से हुआ था। हरिराय जी के चार पुत्र थे जिनका असमय देहावसान हो चुका था।

हरिराय जी की सात बैठकें हैं। हरिराय जी ने देश व्यापी यात्राएँ कर पुष्टि सम्प्रदाय का प्रचार किया है। हरिराय जी ने अपनी यात्राओं में वल्लभाचार्य जी, विट्ठलनाथ जी आदि पूर्वजों के शिष्य सेवकों की जीवन गाथाओं को ढूंढने का महत्वपूर्ण कार्य भी किया। हरिराय जी ने गद्य और पद्य दोनों विधाओं में ग्रन्थ रचना की है। हरिराय जी ने संस्कृत, हिन्दी–ब्रज भाषा, गुजराती, राजस्थानी, पंजाबी भाषाओं का प्रयोग अपनी ग्रन्थ रचना में किया है। अपने छोटे भाई को लिखे शिक्षा–पत्र हरिराय जी की सर्वाधिक सुप्रसिद्ध साम्प्रदायिक रचना है।[१०] इसके अलावा चौरासी और दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता पर 'भावना टीका' की रचना, साथ ही महाप्रभु जी की प्राकट्य वार्ता, श्री गोवर्धन नाथ जी प्राकट्य वार्ता, निजवार्ता, महाप्रभु श्री गुसाँई जी के स्वरूप कौ विचार, श्री नाथ जी के चरण चिन्ह, श्री गोकुलनाथ जी की बैठक चरित्र, शरण मंत्र और मार्ग शिक्षा, नव ग्रह आचार, वैष्णव नित्य कृत्य आदि। हरिराय जी ने लगभग २०० से भी अधिक ग्रन्थों की रचना की है। हरिराय जी ने हरिदास, हरिधन, रसिक, रसिकराय, रसिक प्रीतम आदि नामों से पद्यात्मक रचनाएँ की हैं। हरिराय जी ने गोकुलनाथ जी की उपस्थिति में ही उनके वचनामृतों का सम्पादन करते हुए समस्त वार्ता साहित्य पर भाव टीकाएँ लिखी। जिनसे वार्ता साहित्य के समझने में सुविधा होती है और उसका महत्व प्रकट होता है।

हरिराय जी के सेवकों में हरिजीवन दास, विट्ठलनाथ भट्ट, प्रेम जी आदि प्रमुख थे। हरिराय जी का तिरोधा संवत् १७७२ मे खमनोर गाँव (राजस्थान) में हुआ था।

## हरिराय जी का महत्व

हरिराय जी प्रकाण्ड पंडित, विशिष्ट विद्वान, धुरंधर धर्म वेता थे। पुष्टि सम्प्रदाय के विद्वानों ने साहित्य रचनाएँ तो की हैं किन्तु सभी रचनाएँ मुख्यतः देव भाषा संस्कृत में हैं जो विद्वान पंडितों के लिए सहज है। परन्तु हरिराय जी ने

संस्कृत भाषा के साथ लोक भाषा ब्रज भाषा में भी ग्रन्थ रचनाएँ कीं जिसके कारण पुष्टि सम्प्रदाय के गूढ़ सिद्धान्तों को साधारण जन मानस तक पहुँचाया जाए। हरिराय जी पुष्टि साहित्य के प्राण हैं इनके ग्रन्थों के अध्ययन द्वारा समस्त पुष्टि सम्प्रदाय का सारा स्वरूप जाना जा सकता है। हरिराय जी मानो पुष्टि सम्प्रदाय के अचल स्तम्भ हैं। वल्लभाचार्य जी, विट्ठलनाथजी, गोकुलनाथ जी की तरह हरिराय जी को भी पुष्टि सम्प्रदाय में 'महाप्रभु' व 'प्रभुचरण' के गरिमामय सम्बोधनों से सम्मानित किया गया है।

श्री विष्णु विराट चतुर्वेदी का कथन है कि 'वे हिन्दी गध के पितामह थे और काव्य कौमुदी के सुधाकर। वे पुरोधा आचार्य थे और एक कुशल उपदेशक। वे विनम्र भक्त, सहृदय कवि, निष्णात कलाविद् तथा ब्रज भाषा–साहित्य के क्षेत्र में एक इतिहास पुरुष थे।'[११] 'ब्रजभाषा ने हिन्दी साहित्य को गोरवान्वित किया है तो गो. हरिराय जी ने ब्रज भाषा को गोरवान्वित किया है। ब्रज भाषा के सात शताब्दी दीर्धकालिन इतिहास में गोस्वामी हरिराय जी जैसी प्रांजल प्रज्ञात्मक चेतना से संपृक्त अन्त व्यक्तित्व दिखाई नहीं देता है, जिसने अपनी १२५ वर्ष की आयु में लगभग २५० ग्रन्थों का प्रणयन किया हो।'[१२] अपने 'भक्त चरितांकं' नामक विशेषांक में गोस्वामी जी के बारे में कल्याण का उल्लेख इस प्रकार है 'पुष्टि सम्प्रदाय के विकास में श्री हरिराय जी ने बड़ा योग दिया। उनका सबसे बड़ा कार्य वार्ता–साहित्य का संकलन था। ....वे संस्कृत, गुजराती और ब्रजभाषा साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान और मर्मज्ञ थे। उन्होंने निरूपण, निराकरण, रहस्य, तात्पर्य, विवेक, विवेचन, विवृति, लक्षण सम्बन्धी पुष्टि ग्रन्थों की रचना की। उनकी अष्टपदी में श्री वल्लभ, श्री कृष्ण और राधा रानी के प्रति दृढ भक्ति का परिचय मिलता है।'[१३]

## २. पुष्टिमार्ग के भक्त कवि-अष्टछाप ::

पुष्टिमार्गीय पद्य साहित्य में सबसे ऊँचा स्थान अष्टछाप कवियों का है। जैसा कि पहले लिख चुकी हूँ कि अष्टछाप की स्थापना गुसाँई विट्ठलनाथ जी ने वि.सं. १६०२ में की थी जिसमें चार कवि शिष्य अपने पिता वल्लभाचार्य के थे ओर चार कवि शिष्य अपने थे जिनके नाम इस प्रकार हैं कुम्भनदास, परमानन्द दास, सूरदास, कृष्णदास, चतुर्भजदास, गोविन्द दास, नंद दास, छीत स्वामी। इन आठों भक्त कवियों ने गोवर्धन पर्वत पर स्थित प्रभु श्री नाथ जी मंदिर में कीर्तन सेवा का कार्य किया था। श्री कृष्ण के जीवन के विविध रूपों को लेकर प्रेम और भक्ति से ओत–प्रोत काव्य की रचना इन अष्टछाप कवियों ने की है वह संसार में व साहित्य में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। अष्टछाप के पदों में भावों की अभिव्यक्ति और संगीत की ध्वनि का अनन्य सामंजस्य देखने को मिलता है। इन अष्टछाप कवियों का काव्य लौकिकता से अलौकिक आध्यात्मिकता की अनुभूति करता हुआ हमारी आत्मा को झकझोर देता है। इन अष्टछाप कवियों का संक्षिप्त जीवन–वृत्तांत इस प्रकार है –

## १. कुम्भनदास –

कुम्भनदास जी का जन्म संवत् १५२५ की कार्तिक कृष्ण एकादशी को गोवर्धन के समीप जमुनावतौ गाँव में हुआ था। कुम्भनदास गोरवा क्षत्रिय जाति के थे। परसौली चन्द्रसरोवर के समीप थोड़ी पैतृक भूमि थी वही कृषि कार्य करते हुए अपने 'परिवार का जीवन यापन' करते थे। कुम्भनदास के कुटुम्ब में उनके चाचा धर्मदास का नाम ही मिलता है जो भगवद् भक्त थे जिनका पर्याप्त प्रभाव कुम्भनदास पर था। कुम्भनदास अवकाश के समय थोड़ा बहुत भगवद् गायन किया करते थे, उनका कण्ठ मधुर था। कुम्भनदास की पत्नी जैत गाँव के पास बहुलावन की रेहने वाली थीं। कुम्भनदास के सात पुत्र थे। खेती ही एक मात्र आय का स्त्रोत था जिससे परिवार का पालन पोषण होता था।

वल्लभाचार्य ने प्रभु 'श्री नाथ जी' को गोवर्धन पर छोटा सा मंदिर बनवा कर उसमें पधराया तभी कुम्भनदास, रामदास चौहान, सदू पाण्डे आदि को शिष्य बनाया और श्री नाथ जी सेवा का कार्य सौंपा, जिसमें कुम्भनदास को कीर्तन का कार्य सौंपा गया। अपने गुरु वल्लभाचार्य के आशीर्वाद से कुम्भनदास को प्रभु श्री कृष्ण की लीलाओं की स्मृति हुई और नित्य नये पद रच कर कीर्तन कर श्री नाथ जी को सुनाते थे। यूँ कीर्तन सेवा में सर्वप्रथम नाम कुम्भनदास का है। संगीत कला का ज्ञान कुम्भनदास को कैसे प्राप्त हुआ इसका कोई उल्लेख प्राप्त नहीं होता है।

कुम्भनदास की कीर्ति उनके समय में ही दूर–दूर तक फैल गई थी। एक बार बादशाह अकबर ने कुम्भनदास जी को फत्तेहपुर सीकरी बुलाया, बड़ा सम्मान किया और कहा–कुम्भनदास जी आप बड़े सुंदर पदों की रचना करते हैं कोई नवीन पद सुनाइए। कुम्भनदास जी का मन भगवान की सेवा छोड़ कर आने से बड़ा खिन्न था फिर भी कुम्भनदास ने यह पद गाया –

'भक्तन कौ कहा सीकरी सों काम।
आवत जात.पन्हैयां टूटी, बिसर गयौ हरिनाम।।
जाकौ मुख देखै दुख लागै, ताको करन परी परनाम।
कुम्भनदास लाल गिरधर बिन यह सब झूठौ धाम।।'

यह पद सुन कर अकबर ने कुम्भनदास को स–सम्मान लौटा दिया। कुम्भनदास श्री नाथ जी के मंदिर पहुँचे, प्रभु के दर्शन किये तो सारी अप्रसन्नता दूर हो गाई।

फिर एक बार राजा मानसिंह श्री नाथ जी के दर्शन करने गोवर्धन आए जहाँ उन्होंने कुम्भनदास का कीर्तन सुना। राजा मानसिंह दूसरे दिन कुम्भनदास से मिलने उनके घर जमुनावतौं गाँव पहुँचे, कुम्भनदास की निर्धनता देखकर राजा मानसिंह ने उन्हें कुंछ द्रव्य भेंट देना चाहा किन्तु कुम्भनदास ने कुछ भी लेने से इनकार कर दिया। यह देख राजा मानसिंह ने कहा–मैंने विरक्त त्यागी तो बहुत देखे किन्तु ऐसा गृहस्थ त्यागी पहली बार देखा है।

फिर एक बार गुसाँई विट्ठलनाथ जी ने कुम्भनदास को अपने साथ द्वारिका की यात्रा पर चलने को कहा ताकि कुम्भनदास को वैष्णवों से कुछ भेंट मिले और उनका आर्थिक कष्ट थोड़ा दूर हो। कुम्भनदास गुसाँई जी के साथ तो चल दिए किन्तु उनका मन श्री नाथ जी प्रभु में लगा रहा। थोड़ी दूर जाने पर ही कुम्भनदास श्री नाथ जी प्रभु के विरह में विवह्ल हो गए और उनके आँखों से अश्रु बहने लगे। तब कुम्भनदास ने यह पद गाया–

'किते दिन है जु गए बिनु देखे।
तरुन किसोर रसिक नन्दनन्दन कछुक उठति मुख रेखे।।
वह सोभा, वह काँति बदन की कोटिक चंद विसेखे।
वह चितवन, वह हास्य मनोहर, वह नटवर बपु भेषें।।
स्यामसुंदर संग मिल खेलन की आवत जिये अमेखें।
कुम्भनदास लाल गिरधर बिन जीवन जन्म अलेखें।।'

कुम्भनदास जी की यह दशा देख कर विट्ठलनाथ जी ने कहा–कुम्भनदास तुम्हारी यात्रा हो चुकी। मंदिर में जाओ और श्री नाथ जी के दर्शन और कीर्तन की सेवा करो।

निर्धन होते हुए कुम्भन दास ने कभी किसी के सामने हाथ नहीं पसारा। सम्मान पूर्वक दिए गए द्रव्य को भी कुम्भनदास ने स्वीकार नहीं किया। फिर एक बार वृंदावन के अनेक भक्त महानुभाव कुम्भनदासका उत्कृष्ट काव्य और कीर्तन की प्रशंसा सुनकर उनसे मिलने आए, और कहा–तुम्हारे युगल स्वरूप के कीर्तन बहुत सुने, परि कृपा करि के कोई पद श्री स्वामिनी जी का सुनाओ। तब कुम्भनदास जी ने यह पद सुनाया–

'कुंवरि राधिका तु सकल सौभाग्य सींव,
बदन पर कोटि सत चंद्र वारों।।'

कुम्भनदास जी का यह पद कीर्तन सुन कर हरिदास जी और हित हरिवंश जी बहुत प्रसन्न हुए और उनके काव्य की भूरि–भूरि प्रशंसा करने लगे।

इन घटनाओं से कुम्भनदास जी की दृढ़ भक्ति, ईश्वर में पूर्ण विश्वास, हृदय की निर्भीकता तथा निस्पृहता का परिचय मिलता है।

कुम्भनदास जी का गोलोकवास लगभग संवत् १६३९/१६४० में हुआ था अपने अंतिम समय में कुम्भनदास ने यह पद गाया था–

'रसिकनी रस में रहत गडी।

कनक बैलि बृषभानु नन्दिनी स्याम तमाल चढ़ी।

विहरत श्री गिरिधरन लाल संग कोने पाठ चढ़ी।

कुम्भनदास प्रभु गोवर्धन धर रति रस केलि बढ़ी।'[१४]

कुम्भनदास ने कोई ग्रन्थ रचना नहीं की। उनके केवल २०० फुटकल पद मिलते हैं जो पुष्टि सम्प्रदाय के कीर्तन साहित्य में देखने को मिलते हैं।

संवत् १६०२ में अष्टछाप की स्थापना हुई थी जिसमें विट्ठलनाथ जी ने कुम्भनदास जी तथा उनके पुत्र चतुर्भज दास को सम्मिलित किया।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कुम्भनदास जी के बारे में कहा है–'पूरे विरक्त और धन, मान, मर्यादा की इच्छा से कोसों दूर थे।'[१५]

## २. सूरदास –

सूरदास का जन्म संवत् १५३५ की वैशाख सुदी पंचमी को हुआ था। सूरदास दिल्ली के निकट सीहीं नामक गाँव के रहनेवाले थे। सूरदास जी सारस्वत ब्राहमण थे। सूरदास जन्मांध थे या अमुक अवस्था में अन्ध हुए इसका कोई प्रमाण प्राप्त नहीं होता है। विद्वानों का मत है कि सूरदास विरक्त होकर घर से निकल पड़े और १८ वर्ष तक गाँव से कुछ दूर एक तालाब के पास पीपल के वृक्ष के नीचे रहने लगे। सूरदास के विवाहित होने का कहीं कोई उल्लेख नहीं है। धीरे–धीरे सूरदास की ख्याति फैलने लगी और लोग उन्हें स्वामी जी कहने लगे।

एकान्त स्थान की तलाश में सूर ब्रज की ओर चल पड़े, जहाँ आगरा और मथुरा के बीच यमुना के किनारे पर स्थित गऊघाट नामक स्थान पर रहने लगे। विद्वानो का मत है संत–महात्माओं तथा विद्वानों के सत्संग में सूर ने काव्य, संगीत और गायन का ज्ञान प्राप्त किया। ३१ वर्ष तक सूर गऊघाट पर रहते थे एक भक्त महात्मा के रूप में सूर की ख्याति फैलने लगी थी।[१६] सूर सदा विनय, वैराग्य के पद गाते थे।

एक बार यात्रा करते हुए वल्लभाचार्य गऊघाट पर रुके, यही सूरदास वल्लभाचार्य की शरण में आए। वल्लभाचार्य ने सूर को अपने पास बिठाया और कुछ गाने को कहा। तब सूर ने यह पद सुनाया –

'हों हरि सब पतितन को नायक'

यह पद सुनकर वल्लभाचार्य ने कहा प्रभु श्री कृष्ण की लीला का, यश का वर्णन करो। सूर ने कहा–महाराज मैं लीला का रहस्य नहीं जानता। तब वल्लभाचार्य ने सूर को पुष्टि सम्प्रदाय की दीक्षा दी और अपनी सुबोधिनी का बोध कराया। फिर सूर ने अपने गुरु की आज्ञानुसार ही पद रचना की। कुछ समय गोकुल में नवनीतप्रिय जी के सम्मुख भगवद् कीर्तन करने के बाद वल्लभाचार्य ने सूर को गोवर्धन स्थित श्री नाथ जी के मंदिर में कीर्तन करने की सेवा दी। गोवर्धन आने पर सूर ने अपना स्थायी निवास चन्द्रसरोवर के समीप, परासोली में बनाया था और यहीं से प्रतिदिन श्री नाथ जी के मंदिर में जा कर कीर्तन सेवा करते थे।

एक बार तानसेन ने सूर का एक पद अकबर को सुनाया। वह पद सुन अकबर सूर से मिलने आया। अकबर ने सूर को कुछ सुनाने को कहा, तो सूर ने वैराग्य और भक्ति से भरा यह पद गाया–'मना रे ! तु कर माधा सो प्रीत।' फिर अकबर ने उसका यश वर्णन करता हुआ पद गाने को कहा तो सूर ने यह पद गाया –

'नाहिंन रहौ मन में ठौर।

नंदनंदन अछत कैसे आनिऐ उस और चलत,

चितवत, दिवस जागत, सपन सोवत रति।
हृदय ते वह स्याम मूरति छन न इत उत जाति।।
कहत कथा अनेक ऊधौ लोक लाभ दिखाय।
कहा करौं तन प्रेम पूरन घट न सिंधु समाय।।
स्याम गात, सरोज आनन ललित अति मृदु हास।
सूर ऐसे रूप कारन मरत लोचन प्यास।'

यह पद सुन कर अकबर सूर की निस्पृहता पर चकित हो गया। सूर के मन में श्री कृष्ण भगवान के अतिरिक्त किसी के लिए कोई स्थान नहीं है।

सूर प्रभु के श्रृंगार का यथावत वर्णन करते थे। एक दिन विट्ठलनाथ जी के पुत्र गिरिधर लाल जी ने सूर की परीक्षा ली। उन्हों ने प्रभु नवनीत प्रिया जी को केवल मोतियों का श्रृंगार किया। जब दर्शन खुले तो सूर ने यह पद गाया–[१७]

'देखे री हरि नंगम नंगा।
जल सुत भूषण अंग बिराजत बसन हीन छबि उठत तरंगा।
अंग अंग प्रति अमित माधुरी निरषि लजित रति कोटि अनंगा।
किलकत दधि सुत मुष ले मन भरि सूर हंसत ब्रज जुवतिन संगा।।'

पुष्टि सम्प्रदाय में आने से पूर्व ही सूर विनय के पद बना कर गाया करते थे। विद्वानों का मत है कि सूर ने एक लाख पद रचनाएँ की हैं। हरिराय जी का कहना है कि सूरदास ने चार नामों से पद रचनाएँ की हैं–सूर, सूरदास, सूरजदास तथा सूर स्याम।[१८] सूरदास की रचना से उनके गम्भीर ज्ञान एवं प्रकाण्ड पांडित्य का परिचय प्राप्त होता है साथ ही यह भी विदति होता है कि वे ब्रज भाषा और संस्कृत के अच्छे विद्वान थे। उन्होंने यह अपार ज्ञान किस प्रकार प्राप्त किया, किन भाग्यवान पुरुषों को इस महा कवि के विद्या गुरु होने का सौभाग्य प्राप्त है इन बातों का कही कोई भी उल्लेख नहीं है। सूर सागर, सूर सारावली और साहित्य लहरी–सूरदास की प्रमुख रचनाएँ है। सूरदास का गोलोकवास संवत् १६४० में हुआ था। विट्ठलनाथ जी ने सूर के बारे में कहा था–आज पुष्टिमार्ग का जहाज जाने वाला है

जिसको जो कुछ लेना हो, वह लेले।[19] अपने अंतिम समय में सूर ने यह पद गाया था–

'खंजन नैंन रूप रस माते अति सै चारु चपल अनियारे,
पल पिंजरा न समाते।।
चलि–चलि जात निकट स्त्रवनन के, उलटि पलटि ताटक फँदाते।
सूरदास अंजन–गुन अटके नतरु अबहि उड़ि जाते।।'

इसके पश्चात् सूरदास ने अपने गुरु वल्लभाचार्य के लिए यह पद गाया–

'भरासो दृढ इन चरनन केरो।
श्री वल्लभ नख चन्द्र छटा बिनु, सब जग माझ अंधेरो।।
साधन नाहिं और या कलि में, जासों होय निबेरो।
सूर कहा कहे द्विविध आँधरो, बिना मोल को चेरो।।'

विट्ठलनाथ जी ने सूर को सं. १६०२ में अष्टछाप में सम्मलित किया। इन आठों कवियों में सूर सर्वश्रेष्ठ माने गए हैं।

### ३. परमानंद दास –

परमानंद दास का जन्म संवत् १५५० की मार्गशीर्ष सुदी सप्तमी को हुआ था। इनका जन्म स्थान कन्नौज था। ये कान्यकुब्ज ब्राहमण थे। इनके पिता को दानादि से जो प्राप्त होता था उसी से जीवन निर्वाह होता था। जब बालक का जन्म हुआ तो एक शेठ ने प्रसन्न होकर इनके पिता को बहुत सा द्रव्य दिया, जिसके अपार आनंद के कारण बालक का नाम परमानंद रखा गया।[20] परमानंद ने आजीवन विवाह नहीं किया था। परमानंद बाल्य काल से ही वैरागी थे इनका मन भगवत भक्ति में रमा हुआ था। साधु–संगति में रेहने के कारण कविता करना और गाना सहज हो गया था। परमानंद एक कवीश्वर और गवैये के रूप में प्रसिद्ध होने लगे थे इनका कीर्तन समाज बहुत बड़ा था तथा लोग इन्हें परमानंद स्वामी कहने लगे थे। मकर संक्रान्ति के स्नान करने के अवसर पर परमानंद कन्नौज से प्रयाग

आए। प्रयाग में भी परमानंद के भजन–कीर्तन का कार्यक्रम यथावत चलता रहता था वहीं यमुना के दूसरी ओर अड़ेल में वल्लभाचार्य जी का निवास था। परमानंद के भजन–कीर्तन की प्रसिद्धि सेवकों द्वारा वल्लभाचार्य तक भी पहुँच गई थी। एकादशी की रात्रि भजन–कीर्तन करने के पश्चात् परमानंद की आँख लग गई और स्वप्न में उनको वल्लभाचार्य के दर्शन की प्रेरणा हुई। दूसरे दिन परमानंद अड़ेल वल्लभाचार्य के पास पहुँचे। वल्लभाचार्य ने परमानंद को भगवत् यश वर्णन करने को कहा। परमानंद ने यह पद गाया–

'जिय की साधन जिय ही रही री।
बहुरि गोपाल देखि नहीं पाए बिलपत कुंज अहीरी।।
इक दिन सोंज समीप ये मारग, बेचन जाता दहीरी।
प्रीत के लिए दान मिस मोहन, मेरी बाँह गहीरी।।
बिन देखें घड़ी जाता कलप सम, विरहा अनल दहीरी।
परमानंद स्वामी बिन दरसन नैन न नींद बहीरी।।'

फिर वल्लभाचार्य ने प्रभु की बाल लीला का वर्णन करने को कहा, तो परमानंद ने कहा–मुझे बाल लीला का बोध नहीं है। तब वल्लभाचार्य ने परमानंद को शरण में लिया संवत् १५७६/१५७७ की ज्येष्ठ शुक्ल द्वादशी।[२१] फिर वल्लभाचार्य जी के साथ ही परमानंद ब्रज की ओर चले। रास्ते में परमानंद का गाँव कन्नौज आता है यहाँ पर परमानंद ने अपने गुरु वल्लभाचार्य तथा सभी साथी सेवकों का यथा योग्य सत्कार किया। यही पर परमानंद ने वल्लभाचार्य जी को यह पद सुनाया – 'हरि तेरी लीला क़ी सुधि आवै।' इस पद को सुन कर वल्लभाचार्य तीन दिन तक मूर्च्छा में रहे। फिर कन्नौज से सभी लोग ब्रज में गोकुल में कुछ दिन रेह कर फिर गोवर्धन पर स्थित श्री नाथ जी के मंदिर पर पहुँचे। अपनी तमाम उम्र परमानंद ने श्री नाथ जी की कीर्तन सेवा की। परमानंद गोवर्धन के समीप सुरभी कुण्ड के पास श्याम तमाल वृक्ष के नीचे रहा करते थे।

परमानंद दास की मृत्यु संवत् १६४१/१६४० में हुई थी।[२२] आपने अन्त में युगल लीला का स्मरण कर परमानंद ने यह पद गाया था – 'राधे बैठी तिलक सभारति।'[२३]

परमानंद की मृत्यु के पश्चात् विट्ठलनाथ जी ने कहा था पुष्टिमार्ग के दो सागर नहीं रहे – सूरदास और परमानंद दास। इस तरह अष्टछाप के कवियों में विट्ठलनाथ जी ने परमानंद दास जैसे उच्चकोटि के भक्त, कवि, संगीतज्ञ व कीर्तनकार का समावेश किया।

पुष्टिमार्ग में आने से पूर्व ही परमानंद दास–परमानंद स्वामी, परमानंद, परमानंद दास और परमानंद प्रभु के नाम से पद रचना किया करते थे। परमानंद ने बहुसख्यक पदों की रचना की है। परमानंद की रचनाओं में परमानंद सागर का नाम मुख्य है।

## ४. कृष्णदास अधिकारी –

विद्वानों के मतानुसार कृष्णदास का जन्म संवत १५५२/१५५३ में गुजरात के चलोतर (चिलोत्तर) नामक गाँव में हुआ था। ये कुनबी पटेल थे। इनके पिता गाँव के मुखिया थे। कृष्णदास के पिता धनलोलुप व्यक्ति थे और धनोपार्जन के लिए असत्य का आचरण करते थे, इसी कारण एक बार बालक कृष्णदास ने पिता के विरुद्ध राजा के सामने गवाही दी, तो कृष्णदास को घर से निकाल दिया गया। इस समय कृष्णदास की आयु तेरह वर्ष की थी। घर से निकलने के बाद कृष्णदास तीर्थों में पर्यटन करते हुए ब्रज में आए। फिर गोवर्धन पर देवदमन के दर्शन के लिए आए। यही पर वल्लभाचार्य से भेंट हुई और वल्लभाचार्य ने बालक कृष्णदास को दीक्षा देकर शरण में लिया। कृष्णदास का शरणागत संवत् १५६६/१५६७ था।[२४] कृष्णदास को वल्लभाचार्य ने पहले श्री नाथ जी की भेंट एकत्रित करने का कार्य सौंपा था और फिर श्री नाथ जी मंदिर का अधिकारी बनाया था। कृष्णदास मंदिर का हिसाब–किताब गुजराती भाषा में ही करते थे।

कृष्णदास की कुशाग्र और व्यवहारिक बुद्धि से सभी लोग प्रभावित थे। कृष्णदास के साम्प्रदायिक जीवन में अनेक घटनाएँ घटित हुई जिनमें से एक है बंगाली सेवकों को मंदिर से निकालना। इसके पश्चात् कृष्णदास ने मंदिर के विभिन्न कार्यों के सम्पादन के लिए अनेक कर्मचारियों को नियुक्त किया। इस प्रकार श्री नाथ जी के अधिकारी की मर्यादाएँ कायम हुई और उनका वैभव और प्रभाव खूब बढ़ा।

इसके बाद पारिवारिक कलह में कृष्णदास ने विट्ठलनाथ जी के आचार्य पद का विरोध करते हुए उन्हें छः महीने तक श्री नाथ जी भगवान के दर्शन से वंचित रखा था। विट्ठलनाथ जी के पुत्र गिरधर लाल जी ने राज आज्ञा से कृष्णदास को बन्दी बनाकर कारागार में डलवा दिया था किन्तु जब विट्ठलनाथ जी को इस बात का पता चला तो उन्होंने अन्न–जल का त्याग कर दिया और कृष्णदास के लौट कर आने की राह देखी। इसके पश्चात् कृष्णदास ने विट्ठलनाथ जी से माफी मांगी और उनके परम भक्त बन गए।

मंदिर के कार्य करने के साथ–साथ जब कृष्णदास को समय मिलता वे साम्प्रदायिक सिद्धान्त और सेवा का ज्ञान प्राप्त करते थे और साथ ही सूर, कुम्भन आदि महानुभावों के भगवत् सत्संग से गान और काव्य कला का ज्ञान भी प्राप्त करते थे। इसी भक्ति के आवेश में बह कर कृष्णदास ने भी अपने आराध्य श्री कृष्ण की लीलाओं का गान किया। किशोर अवस्था से ही श्री नाथ जी प्रभु की कृपा से और गुरु वल्लभाचार्य के आशीर्वाद से कृष्णदास ने धीरे–धीरे काव्य और संगीत का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर सुन्दर भक्ति पूर्ण पदों की रचना कर अपने प्रभु को रिझाया। कृष्णदास की भक्ति भाव को देखकर और उनके कीर्तन को जान कर ही विट्ठलनाथ जी ने कृष्णदास का अष्टछाप में सम्मिलन किया। कुशल प्रबन्धक होने के साथ–साथ, सुन्दर और अद्वितीय कवि एवं कीर्तनकार के रूप में भी कृष्णदास का महत्व कम नहीं है।

कृष्णदास की मृत्यु कुएँ में गिर जाने के कारण हुई थई। कृष्णदास की मृत्यु का संवत १६३२ से १६३८ के बीच का है।[२५] प्रभुदयाल मीत्तल ने कृष्णदास की मृत्यु का संवत १६३६ कहा है। [२६]

कृष्णदास ने अधिकांशतः शृंगार रस भावना प्रधान पदों की रचना की है। कृष्णदास के लगभग ६७६ पदों का संग्रह प्राप्त है।

## ५. गोविन्द दास –

गोविन्द दास का जन्म संवत १५६२ है। गोविन्द दास का जन्म भरतपुर राज्य के अन्तर्गत आँतरी गाँव में हुआ था। गोविन्द दास का जन्म सनाढ़य ब्राह्मण कुल में हुआ था। गोविन्द दास की एक लड़की का उल्लेख वार्ता साहित्य से प्राप्त होता है अत गोविन्द दास पहले गृहस्थ थे और उनकी सन्तान में एक लड़की तो थी ही। [२७] कुछ समय पश्चात् संसार से विरक्त हो कर गोविन्द दास ब्रज के महावन में रहने लगे। फिर कुछ समय के बाद गोकुल और महाबन के बीच टीले पर बैठ कर भगवद् गुण–गान गाया करते थे। गोविन्द दास उच्चश्रेणी के संगीताचार्य एवं उत्तम गायक और कवि थे। कुछ ही समय में इनके अनेक शिष्य बन गये थे जो इन्हें 'स्वामी' कहने लगे थे। गोविन्द दास से सीखे पद कुछ लोग विठ्ठलनाथ जी को सुनाया करते थे गुसाँई जी प्रसन्न हो कर उन लोगों को ठाकुर जी का प्रसाद देते थे। इस प्रकार गोविन्द दास और विठ्ठलनाथ जी एक–दूसरे से कुछ परिचित अवश्य थे किन्तु मिले नहीं थे। इस समय ब्रज में विठ्ठलनाथ जी का प्रभाव बहुत बड़ा था। उनकी भगवद् भक्ति से आकर्षित हो कर गोविन्द दास ने सम्प्रदाय में दीक्षा ली। गोविन्द दास जी संवत १६९२ में विठ्ठलनाथ जी की शरण में आए थे। गोवर्धन में गिरिराज की कदम खण्डी में गोविन्द दास का स्थायी निवास था। यहीं से ये श्री नाथ जी के मंदिर में कीर्तन करने जाते थे। गोविन्द दास संगीत शास्त्र के अद्वितीय विद्वान थे। अकबर के संगीतज्ञ तानसेन गोविन्द दास से संगीत सीखने आता था। गोविन्द दास की भगवद भक्ति और कीर्तन गान

को जान कर विट्ठलनाथ जी ने उन्हें अष्टछाप में सम्मिलित किया। संवत् १६४२ में गोविन्द दास की मृत्यु हुई थी। गोविन्द दास रचित २५२ पदों का एक संग्रह ही प्राप्त होता है।

## ६. नंद दास –

नंद दास का जन्म संवत् १५९० है, नंद दास रामपुर गाँव के रेहने वाले थे। नंद दास सनाढ्य ब्राह्मण थे। तुलसीदास और नंद दास चचेरे भाई थे दोनों भाईयों ने पण्डित नरहरि से शिक्षा प्राप्त की थी। नंद दास संस्कृत भाषा के अच्छे विद्वान थे। एक समय नंद दास काशी से एक संघ के साथ द्वारिका रणछोड़ भगवान के दर्शन करने चल दिए। कुछ दिनों के लिए संघ मथुरा में रुक गया तो नंद दास अकेले ही आगे बढ़ गए। कुछ आगे जा कर नंद दास रास्ता भटक गए तथा सिंहनद नामक गाँव में जा पहुँचे। वहाँ नंद दास ने एक रुपवती स्त्री देखी और उस पर आसक्त हो गए। नंद दास की हरकतें देख उस स्त्री का परिवार ब्रज की यात्रा को चल पड़ा। नंद दास भी इनके पीछे चल दिए और गोकुल पहुँच गए। यहीं नंद दास विट्ठलनाथ जी से मिले और उनका मोह दूर हो गया। नंद दास ने विट्ठलनाथ जी से दीक्षा लेकर उनके शिष्य बन गए। नंद दास संवत १६१६ में विट्ठलनाथ जी की शरण में आए। नंद दास का मोह उन्हें गृहस्थी में फिर खींच ले गया। कुछ समय पश्चात् नंद दास फिर संसार से विरक्त हो कर प्रभु श्री नाथ जी की शरण में आ गए और जीवन पर्यन्त उनकी सेवा की। नंद दास का निवास गोवर्धन पर स्थित मानसी गंगा पर था। अपने शेष जीवन नंद दास ने भजन कीर्तन कर प्रभु सेवा में ही व्यतीत किया। नंद दास की मृत्यु संवत १६३९/१६४० में हुई थी। जब विट्ठलनाथ जी ने अष्टछाप की स्थापना की तब नंद दास उसमें नहीं थे सात सखाओं के साथ विष्णुदास छीपा कीर्तन करते थे। जब नंद दास आए तो उनको अष्टछाप में सम्मिलित किया गया।

नंद दास की काव्य रचनाओं में रास पंचाध्यायी, भ्रमर गीत, रुक्मिणी मंगल, स्याम सगाई, अनेकार्थ मंजरी आदि ग्रन्थ प्रमुख हैं। विद्वानों ने नंद दास के लिए कहा है – 'और कवि गढिया नंद दास जड़िया' – इस उक्ति से ही हम नंद दास की काव्य प्रतिभा की विद्वत्ता का पाण्डित्य देख सकते हैं।

## ७. चतुर्भुज दास –

चतुर्भुज दास के जन्म संवत को लेकर विद्वानों में काफी मत भेद है। प्रभु दयाल मीत्तल ने चतुर्भुज दास का जन्म संवत १५७५ माना है। विद्वान दीन दयालु गुप्त ने संवत १५९७ लिखा है।[२८] चतुर्भुज दास कुम्भनदास जी के सातवें पुत्र थे। चतुर्भुज दास का जन्म स्थान जमुनावतौं गाँव था। ये गोरवा क्षत्रिय थे। चतुर्भुज दास बाल्य काल से ही अपने पिता के साथ प्रभु श्री नाथ जी की भक्ति कीर्तन करने जाते थे। चतुर्भुज दास के छः और भाई थे, पाँच भाई इनसे अलग रहते थे। छठा भाई श्री नाथ जी की गाय चराने जाता थे जहाँ एक दिन सिंह ने उसे मार डाला। चतुर्भुज दास जी की एक चचेरी बहन भी थी जो विट्ठलनाथ जी की शिष्या थी। चतुर्भुज दास की पहली पत्नी का निधन हो गया था। फिर विट्ठलनाथ जी की प्रेरणा से एक विधवा से इन्होंने दूसरा विवाह किया था। इनसे इनका राघवदास नामक एक पुत्र था। चतुर्भुज दास जी की शिक्षा पिता कुम्भनदास और विट्ठलनाथ जी की देख रेख में हुई थी। संगीत तथा काव्य का ज्ञान चतुर्भुज को पिता से प्राप्त होता है। जन्म के ४१ वें दिन ही चतुर्भुज दास को सम्प्रदाय की दीक्षा दी थी।

विट्ठलनाथ जी ने जब अष्टछाप की स्थापना की तब उसमें सभी वयोवृद्ध कवि, भक्त, कीर्तनकार सम्मिलित थे। बालक चतुर्भुज दास भी अपनी प्रतिभा के कारण अपने पूज्यं पिता तथा अन्य वयोवृद्ध भक्त गण के साथ अष्टछाप में सम्मिलित किए गए। यह चतुर्भुज दास के लिए अत्यन्त सम्मान की बात थी।

चतुर्भुज दास का मृत्यु संवत १६४२ था। चतुर्भुज दास ने स्फुट पदों की रचना की थी। . .

८. **छीतस्वामी –**

प्रभु दयाल मीत्तल के अनुसार छीतस्वामी का जन्म संवत १५७२ था। दीन दयालु गुप्त ने छीतस्वामी का जन्म संवत १५६७ में कहा है।[२९] छीतस्वामी मथुरा के रेहने वाले थे ये मथुरिया चौबे थे। छीतस्वामी बीरबल के पुरोहित थे। उनकी वार्षिक वृति बँधी हुई थी जिससे उनके परिवार का पालन–पोषण होता था। एक दिन छीतस्वामी मस्करी करने के इरादे से एक खोटा रुपया और थोथा नारियल लेकर विट्ठलनाथ जी के पास पहुँचे। किन्तु विट्ठलनाथ जी की प्रतिभा से प्रभावित हो कर उनके शिष्य बन गए। छीतस्वामी का शरणागत संवत १५९२ था। इसके बाद वे श्री नाथ जी के कीर्तन करने में ही अपना जीवन व्यतीत करते थे। चौबे होने के कारण ये गान विद्या और कविता के शौक़ीन थे किन्तु श्री नाथ जी के दर्शन के पश्चात् ये सम्पूर्ण रूप से भगवदीय भक्ति में लीन हो गए। छीतस्वामी का निधन संवत १६४२ में गोवर्धन के समीप पूँछरी नामक स्थान पर हुआ था। छीतस्वामी के रचे २०० पद मिलते हैं। विट्ठलनाथ जी के दर्शन व ज्ञान के बाद छीतस्वामी की संगीत कला और काव्य कला में और निखार आया। और विट्ठलनाथ जी उन्हें अष्टछाप में सम्मिलित किया।

९. **अष्टछाप का महत्व –**

वार्ता साहित्य में वर्णित इन भक्त कवियों की जीवन घटनाओं से कई महत्वपूर्ण और रोचक जानकारी मिलती है। सम्प्रदाय में दीक्षित होनें से पूर्व इनमें से कई भक्त कवियों का जीवन हीन कोटि का था।[३०] किन्तु भगवान की शरण में आकर हीन चरित्र वाले व्यक्ति का भी उद्धार हो जाता है। ये आठों भक्त कवि विभिन्न जातियों औंर वर्गों के थे। अतः परम भगवदीय पद पाने वाले अष्टछाप के ये

कवि साधारण कोटि के मनुष्य होने के साथ ही सहज मानवीय दुर्बलताओं से भी युक्त थे किन्तु अपने गुरु वल्लभाचार्य और तद्पुत्र विट्ठलनाथ जी की असीम कृपा से श्री नाथ जी प्रभु के अनन्य व अन्तरंग सेवक बन गए।

विट्ठलनाथ जी ने सम्प्रदाय हेतु ब्रज में स्थायी निवास किया तथा श्री नाथ जी मंदिर में सेवा व्यवस्था का क्रम निश्चित किया, दैनिक आठ सेवाओं तथा वार्षिक व्रतोत्सव की व्यवस्था की, सम्प्रदाय हेतु संगीत, साहित्य और ललित कलाओं का अपूर्व समन्वय कर अपने आराध्य को समर्पित किया। इन आठों भक्त कवियों ने गुरु कृपा से साक्षात् श्री कृष्ण की लीलाओं की अनुभूति कर उसे सुन्दर पदों में रचित किया। ये आठों महानुभाव व्यक्ति पहले भक्त थे कवि बाद में क्योंकि इनकी समस्त काव्य रचना अपने आराध्य को रिझाने के लिए उन्हें प्रसन्न करने के लिए की गई थी। ये आठों भक्त कवि प्रतिदिन श्री नाथ जी की सेवा में उपस्थित हो कर अपनी ओर से उनकी झाँखियों में कीर्तन सेवा किया करते थे। इन आठों कीर्तनकारों के साथ आठ सहकारी कीर्तनकार भी थे जो कीर्तन में उन्हें सहयोग देते थे तथा अवकास के समय में अष्टछाप के कीर्तन लिख लिया करते थे।

साम्प्रदायिक मान्यता के अनुसार ये आठों भक्त कवि श्री नाथ जी के अष्ट सखा है। जो दिन में सखा रूप में बन लीला का आनंद प्राप्त करते हैं और रात्रि में सखी रूप में श्री नाथ जी और स्वामिनी जी के साथ निकुन्ज लीला सुखानुभव करते हैं। इन अष्टछाप के अष्ट सखा – अष्ट सखी रूप के नाम इस प्रकार हैं –

| | | **सखा रूप** | | **सखी रूप** |
|---|---|---|---|---|
| कुम्भनदास | – | अर्जुन | – | विशाखा |
| सूरदास | – | कृष्ण | – | चम्पक लता |
| परमानंद दास | – | तोष | – | चन्द्र भागा |
| कृष्णदास | – | ऋषभ | – | ललिता |
| गोविन्द दास | – | श्री दामा | – | भामा |
| नंद दास | – | भोज | – | चन्द्र लेखा |

चतुर्भुज दास – विशाल – विमला

छीत स्वामी – सुबल – पद्मा

SMT. HANSA MEHTA LIBRARY

इन आठों भक्त कवियों ने प्रत्यक्ष तो पुष्टिमार्ग या शुद्धाद्वैत दर्शन का कहीं विवेचन नहीं किया। किन्तु सम्प्रदाय के मर्म को अपने गुरु ज्ञान द्वारा हृदयंगम जरूर किया था। लोक भाषा ब्रज भाषा में पुष्टिमार्गीय भक्ति को जन जन तक पहुँचाने का कार्य इन अष्टछाप कवियों ने अवश्य किया। इन अष्टछाप कवियों को संगीत शास्त्र का गहन ज्ञान था। इनके विभिन्न राग–रागिनियों में रचे पद आज भी संगीत कला में अद्वितीय हैं। अपने समय के ये प्रख्यात संगीतज्ञ थे। ये कवि अपनी प्रतिभा के बल पर सर्वत्र विख्यात और सम्मानित हो चुके थे। इन कवियों का कीर्तन सुनने के लिए सम्राट अकबर, राजा बीरबल, तानसेन, राजा मानसिंह, स्वामी हरिदास, हित हरिवंश जैसे महानुभाव आते थे। इन कवियों की वाणी का माधुर्य आज भी सुनने वालों को अन्दर से भाव विभोर कर देता है।

विट्ठलनाथ जी द्वारा सम्प्रदाय के हित में की गई अष्ठछाप की स्थापना, कालान्तर में साहित्य और संगीत के क्षेत्र में अविस्मरणीय घटना बन कर रह गई। विद्वानों के मतानुसार यदि हिन्दी साहित्य में से अष्टछाप का साहित्य निकाल दिया जाए तो शेष पर गर्व नहीं किया जा सकता है। पुष्टिमार्गीय मंदिरों में आज भी इन अष्टछाप कवियों के पदों का कीर्तन निश्चित समयानुसार विभिन्न दर्शनों में किया जाता हैं। डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल ने कहा हैं – 'अष्टछाप के कवियों का हिन्दी साहित्य के लिए बहुत ही महत्व है। उत्तर भारत के लोक मानस से निर्गुण की परम्परा हटाकर उनमें सगुण भावों के प्रति आस्था भरने का बहुत अधिक श्रेय अष्टछाप के महामान्य कवियों को है।'[३१] आचार्य रामुचन्द्र शुक्ल का कहना है – 'आचार्यों की छाप लगी हुई आठ वीणाएँ श्री कृष्ण की प्रेम लीला का कीर्तन कर उठीं, जिनमें सबसे ऊँची, सुरीली और मधुर झंकार अंधे कवि सूर की वीणा कि था।'[३२]

श्री ब्रजेश्वर वर्मा के शब्दों में कहें तो – 'इन कवियों का अधिक महत्वपूर्ण योगदान यह है कि इन्होंने जीवन और साहित्य दोनों क्षेत्रों में मानवता के नवीन मूल्यों की स्थापना की तथा मनुष्य का ध्यान पार्थिवता व लौकिकता से हटाकर नहीं अपितु उसका उचित उपभोग करके, उसके प्रति एक तटस्थता तथा निरपेक्षता का दृष्टिकोण बनाकर उसके परे जो सत्य और सुन्दर है, उस ओर लगा दिया। मनुष्य की सौन्दर्य वृत्ति न तो दमनीय है न उपेक्षणीय, इस सत्य का प्रमाण स्वयं अष्टछाप कवियों की जीवन गाथाएँ हैं।'

अन्तः इतना ही कहूँगी कि अष्टछाप भक्त कवि अपने आप में अद्वितीय प्रतिभा के धनी थे जो आज भी यथावत् रूप से विद्यामान है चाहे साहित्य क्षेत्र में हो, संगीत क्षेत्र में हो या साम्प्रदायिक क्षेत्र में। अष्टछाप की काव्य कला देन आज विश्व में अपना सर्वोच्च स्थान रखती है जो भारतीय संस्कृति के लिए दिव्य वरदान है।

******

## :: संदर्भ सूची ::


१. वार्ता साहित्य के अनुसार सम्राट अकबर कि इच्छानुसार विट्ठलनाथ जी ने सूरत के एक साहूकार की पुत्रवधू का न्याय बड़ी कुशलतापूर्वक किया था इस कारण सम्राट अकबर ने विट्ठलनाथ जी को गोसाँई का पद तथा न्यायाधीश का अधिकार देकर सम्मानित किया था।
हीरक जयंती परिशिष्टांक
(वल्लभ सम्प्रदाय में गोस्वामी विट्ठलनाथ जी का महत्व–१४७)
लेखक : विट्ठल परीख

२. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय–(।)–७९, लेखक : डॉ. दीन दयालु गुप्ता

३. देखिए कीर्तन साहित्य (अध्याय–३)

४. पूरवोक्त मुस्लमानी शासन काल में ध्वस्त हुए हिन्दू मंदिरों की अमूल्य संगीत धरोहर को विट्ठलनाथ जी ने अष्टछाप के स्वरूप में फिर से जीवित किया और सम्प्रदाय में शास्त्रीय संगीत का स्थान मजबूत किया।
हीरक जयंती परिशिष्टांग
(वल्लभ सम्प्रदाय में विट्ठलनाथ जी का महत्व–१५०) लेखक : विट्ठल परीख

५. अष्टछाप परिचय–४०, लेखक : प्रभु दयाल मीत्तल

६. हीरक जयंती ग्रन्थ–
(वल्लभ सम्प्रदाय के प्रमुख आचार्य–५२),
लेखक : भगवती प्रसाद देवपुरा

७. हीरक जयंती ग्रन्थ– (वल्लभ सम्प्रदाय के प्रमुख आचार्य–५७),
लेखक : भगवती प्रसाद देवपुरा

८. हीरक जयंती ग्रन्थ
(वल्लभ सम्प्रदाय के प्रमुख आचार्य–५७),
लेखक : भगवती प्रसाद देवपुरा

९. वल्लभाचार्य–विट्ठलनाथ जी–(द्वितीय पुत्र)–गोविन्द राय जी – कल्याणराय जी –हरिराय जी

१०. शिक्षा पत्र संख्या ४१ है इसमें ६१३ श्लोक है।

११, १२, गोस्वामी हरिराय जी और उनका ब्रज भाषा साहित्य–३४७, ३४९
लेखक : विष्णु विराट् चतुर्वेदी

१३. हीरक जयंती ग्रन्थ (वल्लभ सम्प्रदाय के प्रमुख आचार्य–६६),
लेखक : भगवती प्रसाद देवपुरा

१४. कुम्भनदास की मृत्यु के पर्यन्त विट्ठलनाथ जी ने कहा था 'ऐसे भगवदी अन्तर्ध्यान हो गए। अब पृथ्वी पर भगवद् भक्तों का तिरोधान होने लगा हैं।'
– वार्ता साहित्य

१५. हिन्दी साहित्य का इतिहास– १७२
लेखक : रामचन्द्र शुक्ल

१६. अपनी ३१ वर्ष की अवस्था तक सूर गऊघाट पर रहे।
यहाँ पर रहते हुए उन्होंने संगीत, काव्य एवं गायन का पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया और शास्त्र पुराणदि विविध ग्रन्थों का भली भाँति अध्ययन किया।
अष्टछाप परिचय–१३५
लेखक : प्रभु दयाल मीत्तल

१७. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय– (१)– २०३
लेखक : डॉ. दीन दयालु गुप्ता

१८. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय– (१)– २०५
लेखक : डॉ. दीन दयालु गुप्ता

१९. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय– (१)– २०९
लेखक : डॉ. दीन दयालु गुप्ता
+ अष्टछाप परिचय–१४०
लेखक : प्रभु दयाल मीत्तल

२०. अष्टछाप परिचय – १७७,
लेखक : प्रभु दयाल मीत्तल

२१ + अष्टछाप परिचय – १७९
लेखक : प्रभु दयाल मीत्तल
+ हिन्दी साहित्य का बृहद इतिहास (५) – ७७,
नागरी प्रचारणी सभा
+ अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय – (।)–२२२
लेखक : डॉ. दीन दयालु गुप्ता

२२, २३ + अष्टछाप परिचय – १८०,
लेखक : प्रभु दयाल मीत्तल
+ अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय – (।)–२३०/२२८
लेखक : डॉ. दीन दयालु गुप्ता

२४. कृष्ण दास के विवाह या गृहस्थ जीवन का कोई उल्लेख प्राप्त नहीं है।

२५. + अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय – (।)–२६३
लेखक : डॉ. दीन दयालु गुप्ता
+ हिन्दी साहित्य का बृहद इतिहास (५) – ८७,
नागरी प्रचारणी सभा

२६. अष्टछाप परिचय – २२५
लेखक : प्रभु दयाल मीत्तल

२७. गोविन्द दास की बहिन कान बाई भी उनके साथ रहती थई जो विट्ठलनाथ जी की शिष्या थी। – वार्ता साहित्य

२८. हिन्दी साहित्य का बृहद इतिहास (५) – ९९,
नागरी प्रचारणी सभा

२९. हिन्दी साहित्य का बृहद इतिहास – (५) – १०५, नागरी प्रचारणी सभा

३०. जैसे छीत स्वामी, नंद दास।

३१, ३२, अष्टछाप स्मृतिग्रन्थ – ३५,
साहित्य मण्डल, नाथद्वारा

******